श्रीहरिः।

अखिल भारतवर्षीय, वर्णाश्रम, स्वराज्य, संघ।

सप्तमाधिवेशन।

अहमदाबाद

अध्यक्ष—गोस्वामी श्रीगोकुलनाथजी महाराज

का

अभिभाषण।

[१ जनवरी सन् १९३९]

विजयते श्रीबालकृष्णः प्रभुः ।

अखिल भारतवर्षीय वर्णाश्रम स्वराज्यसंघके सप्तम महाधिवेशन
अहमदाबादके सभापति श्रीमद्बालकृष्णचरणपङ्कजपराग-
परिष्कृतमस्तकश्रीमदाम्नायाम्नातसदाम्नायश्रीपुष्टिमार्ग-
सम्प्रदायप्रवर्तक जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य-
वंशोद्भव गोस्वामी-

श्रीगोकुलनाथजी महाराज

का

अभिभाषण ।

यस्मिन्नास्ते जगदिति जगति य आस्ते ययेव जगदिति वा ।
गीतं विद्वद्वृन्दैर्वन्दे कृष्णं कृपा-तत्त्वम् ॥

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं
तीर्थास्पदं शिवविरञ्चिनुतं शरण्यम् ।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल, भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधाव-
द्वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥

परम माननीय ! आचार्य-वर्य- गण ! गण्यमान्य -विद्वद्-वृन्द ! उपस्थित आस्तिक-जन-समाज !

अनेक आचार्य-वर्य तथा विद्वद्वर्योंके उपस्थित रहनेपर भी आप लोगोंने जो हमें अध्यक्ष-स्थान प्रदान किया है, इस लिये हम आप लोगों के आभारका प्रदर्शन करें यह स्वाभाविक बात है। यद्यपि आज कल एक प्रकारकी यह प्रथा सी पड़ गयी है, कि जो अध्यक्ष, स्थानपर इच्छया या अनिच्छया आता है, वह आभार-प्रदर्शन करना अपना कर्त्तव्य समझता है। परन्तु हमारा यह आभार-प्रदर्शन इस प्रथाके अनुसार नहीं है, हम कुछ ही दिन पहले इस सभाके अध्यक्ष दो सालतक रह चुके हैं। अब हमारी यही इच्छा रहती है कि एक धार्मिककी हैसियतसे हम इस सभाकी कार्यवाही करते रहें। इस इच्छाके प्रतिकूल इस वर्ष ऐसी ही परिस्थिति सन्मुख हुई है जिससे हमको कार्यकारिणी-स्वागत-समिति तथा अनेक प्रान्तीय सभाओंने इस स्थानपर उपस्थित होनेके लिये बाधित किया है। परिस्थितिके ज्ञाता होनेसे हमको भी उनका अनुरोध अन्ततोगत्वा मान्य करना पड़ा है।

गत वर्ष बम्बई शहरमें अ० भा० व० व० स्व० संघका अधिवेशन हुआ था, उसमें जैसा कि ऊपर कहा है, हमने एक धार्मिककी हैसियतसे ही सहयोग दिया था। गत वर्षकी परिस्थितिमें और आजकी परिस्थितिम तत्रापि धार्मिक परिस्थितिमें बहुत, कुछ अन्तर पड़ गया है; अर्थात् गत वर्षकी धार्मिक परिस्थिति, तरुण-जनताकी मात्राधिक निरपेक्ष उत्साही बन जानेसे, कुछ भयानक सी मालूम पड़ती थी, तो भी यह आनन्द—कन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका अनुग्रह ही था कि बम्बई शहरका अधिवेशन सुचारु रूपसे सम्पन्न हुआ था। प्रतिनिधियोंकी भीड़ और जनताका उत्साह इस अनुमानकी पूर्ण सामग्री बन रहा था कि यह संघ यदि नियमित रूपसे अपना प्रचार कार्य करता रहेगा तो धर्मके सम्बन्धमें जो जनतामें भ्रम फैलाया गया है वह अति शीघ्र दूर हो जायगा। इस वर्षका धार्मिक-वातावरण सौम्य है यह स्पष्ट ही है।

बम्बईमें रहनेसे और सङ्घके नाते अन्यान्य प्रदेशोंमें आने जानेसे हमको यह अनुभव हुआ था कि अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा इस समय गुजरात

प्रान्तमें ही सङ्घके द्वारा धार्मिक प्रचारकी विशेष आवश्यकता है, हमारे इस विचारके साथ वे सज्जन भी सहमत हो गये थे, जो आरम्भसे ही सङ्घकी कार्यवाहीका श्रद्धापूर्वक अनुशीलन करते आये हैं, इस प्रकार कार्य-कर्त्ताओंके विचारके ऐक्य होनेसे सङ्घके लिये अनेक स्थानोंके निमन्त्रणोंके उपस्थित रहनेपर भी कार्यकर्त्ताओंने अहमदाबादके ही निमन्त्रणको सादर स्वीकार किया। अहमदाबादके निवासी होनेसे तथा मनसा-वाचा-कर्मणा सङ्घके अनुयायी होनेसे तत्कालमें भावी, संप्रति वर्त्तमान इस सातवें अधिवेशनका कर्त्तव्य-भार सेठ नगीनदास पुरुषोत्तमदासजी सङ्घवी और प्रो० जयेन्द्रराय भ० दूरकालजीके आधीन किया गया। आप लोगोंने भी सहर्ष इस गुरुतर कार्य-भारका स्वीकार किया; आप लोगों ही के उस अवसरके उत्साहका यह फल है कि हम सब यहाँ धार्मिक तथा अन्यान्य-विषयोंके स्वरूप निर्धारणके लिये सम्मिलित हुए हैं।

समय आनेपर सत्य, परन्तु अंशतः अमनोहर स्वभावका भी प्रकाशन भविष्यको उज्वल बनानेके लिये, अत्यावश्यक माना गया है। हम भारतवासियोंमें तत्रापि सनातनधर्मावलंबियोंमें इस दोषने स्थान-सा कर लिया है, कि हम लोग अपने कर्तव्यको सावधानीसे तथा पूरी तैयारीसे नहीं करते। यही कारण है कि किसी न किसी अंशमें त्रुटि रह जाती है। पिपासाके लगनेपर जलाशय बनानेवालोंको प्रायः यथासमय जल नहीं मिलता, भाग्य-वश यदि मिला भी तो कीचड़के साथ मुकाबला अवश्य करना पड़ता है। कहनका आशय यह है कि अधिवेशनका समय अति निकट आ गया, वहाँतक हमें मन्त्रियोंके द्वारा या प्रो० दूरकालजी या सङ्घवीजीके द्वारा यह समाचार नहीं मिला कि अधिवेशनके बारेमें क्या और कैसा प्रबन्ध हो रहा है। बम्बई—प्रान्तीय—संघके—कार्य कर्त्ताओंके इस विषय-सम्बन्धी प्रश्नका भी हमें यही उत्तर देना पड़ता था कि हम भी इस बातमें कुछ विशेष जानकारी नहीं रखते। जब अधिवेशनका समय बहुत निकट आगया, तो अखिल-भारतीय-वर्णाश्रमस्वराज्य संघकी कार्यकारिणीकी बैठक ता० २३-११-३४ को हुई जिसमें संघवीजी तथा प्रो० दूरकालजीसे यह समाचार मिला कि अबतक अधिवेशनका प्रबन्ध भविष्यकी गोदमें निद्रा ले रहा है, "यदि आप अहमदाबादमें चलेंगे तो संभव है कि अधिवेशन हो सके। हम पहले

ही कह चुके हैं कि हम संघकी कार्यवाही, एक धार्मिककी हैसियतसे ही करना पसन्द करते हैं; हमने यहाँ आकर अधिवेशनके प्रस्तावको आप नागरिक लोगोंके सामने रक्खा और धन्यवादके साथ कहना पड़ता है कि आप लोग एतदर्थ तुरंत उद्यत हुए। यह देख हमें हर्ष--अति हर्ष हुआ। पर तबतक हमें यह नहीं मालूम था कि प्रमुख भी हमको ही होना पड़ेगा। संघके कार्यकर्त्ता श्रीयुत देवनायकाचार्यजी प्रधान—मन्त्री तथा जोशी गिरिजाशंकरजी स्वागत—मन्त्री आकर, अधिवेशन समयके निकट आनेपर, जब यह कहने लगे कि अबतक किसी अध्यक्षकी स्वीकृति नहीं आयी, और स्वागत समितिकी यह उत्कट इच्छा है कि आपकी ही अध्यक्षतामें अधिवेशन किया जाय, तब तो कुछ समयके लिये हमको अवाक् होना पड़ा और दो योग्य व्यक्तियोंका नाम निर्देशकर शान्ति ग्रहण करनी पड़ी। ता० २२-१२-३४ के दिन पुनः यह समाचार मिलनेपर कि इतना शीघ्र वे भी प्रमुख होकर आना नहीं चाहते, विवश होकर, अन्ततो गत्वा ईश्वरेच्छाके अबाधित होनेसे हमें यहाँ आना पड़ा है। यही हमारा आभार-प्रदर्शन है, या फिर ऐसी भूल न की जाय-यह प्रकार-प्रदर्शन है। अब आप लोगोंसे हम यह साग्रह सूचित करते हैं कि हमारी त्रुटियोंपर ध्यान न देकर हमारे साथ आप लोग इस उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यमें सहयोग प्रदान करेंगे।

सज्जन-वृन्द! किसी भी कार्यकी आवश्यकता तब ही उपस्थित होती है जब कि जीवनमें किसी बातकी कमी मालूम होती है। व० स्व० संघ वर्णाश्रमी हिन्दुओंकी एक बड़ीमें बड़ी संस्था है; इसकी भी आवश्यकता किसी न किसी कमीकी पूर्तिके लिये ही हुई है। संघका यह सातवाँ अधिवेशन है। इस वास्ते किस कमीकी पूर्तिके लिये यह संस्था स्थापित हुई है यह आपलोग प्रायः जानते ही हैं। तो भी जो लोग नहीं जानते होंगे उनके लिये हम संक्षेपसे इस संबन्धमें कुछ कह देना उचित समझते हैं। यह समय विकराल मालूम होता है। यह प्राणियोंके सुखका बड़ी तेज़ीसे अन्त करता जारहा है। जनता अपने स्वार्थसे यहाँ तक विमुख होती जा रही है कि वह अपने हाथों अपने सुखका या सुखके साधनोंका अन्त करती जारही है। धार्मिक जीवन सुखका संरक्षक और समपक है इस बातका ध्यान तो अधिकांश जनताको स्वप्नमें भी

नहीं रह गया है। जनता यह नहीं सोचती है कि हमारे आयुष्यका ह्रास क्यों हो रहा है ? हमारा जीवन रोगमय क्यों बन रहा है ? हमारी विश्वासिता क्यों घटती जारही है ? हमारा यह उपदेश कि "यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः" (जिससे अन्य लोग उद्विग्न=त्रस्त नहीं होते और जो लोग दूसरोंसे स्वयं त्रस्त नहीं होते वेही परमात्माके आज्ञा पालक प्रिय भक्त हैं अर्थात। उन्हींका शास्त्रीय-जीवन सुखमय है,) क्यों उपहासास्पद माना जाता है ? संसारमें दूरके संबन्धियोंमें परस्पर प्रेम तो दूर रहा, निकटके संबन्धियोंमें अर्थात् पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, पति-पत्नी आदिमें भी परस्पर प्रेमका ह्रास क्यों-होता जारहा है ? इन लोगोंको यह भी विचारनेका अवसर नहीं मिलता है कि जहाँ प्रेम नहीं है, स्वास्थ्य नहीं है, सच्चाई नहीं है, वहाँ सुखका अस्तित्व कैसे माना जा सकता है ? केवल औपचारिक दिखावसे क्या वह वास्तविक प्रयोजन सिद्ध हो सकता है ? कदापि नहीं। क्या ऐसे भावोंका प्रचारक या समर्थक व्यक्ति योग्य मानने लायक है ? कदापि नहीं। हमें तो यह देखकर आश्चर्य होरहा है कि प्रजा,दुखके साधनोंको सुखका साधन मान रही है और सुखके साधनोंको दुःखका साधन मान रही है।

यह व्यवहार सर्वजन विदित है कि वर्तमान समयमें जो बड़ी सफाईसे मिथ्याका व्यवहार करता है, वह बुद्धिमान् और सत्यवक्ता माना जाता है, जो सत्य-भङ्गके भयसे प्रामाणिकतासे अपना व्यवहार करता है वह भोलाभाला, अर्थात् बुद्धि-हीन माना जाता है। जो अनेक प्रकारसे रोगवर्द्धक आचार-दूषक व्यभिचार-प्रचारक साहित्यका प्रचार करता है वह समयानुकूल साहित्यका विद्वान् माना जाता है, परन्तु जो मानव-जीवनमें परस्पर विश्वासोत्पादक सन्तोषवर्द्धक शांति-सुख-समर्पक साहित्यका प्रचार करता है वह जीर्णशीर्ण, अदूरदर्शी,लोकरुचिका अपरीक्षक, विक्षिप्त विद्वान् समझा जाता है। इसी प्रकार जनता भाग्योपलब्ध सामग्रीसे धार्मिक जीवनका सन्तोषपूर्वक निर्वाह करे, दैवी-जीवनसे सदा सन्तुष्ट रहे, इस श्लाघ्य सिद्धान्तके उपदेशक ग्रन्थ, उस समुदायमें उपहासास्पद माने जाते हैं। जो समुदाय सदा इसी विचारमें मग्न रहता है कि कैसे २ बम-गोले,गैस आदि ऐसी विषैली चीजोंका आविष्कार किया जाय,जो क्षणमात्रमें

विश्वके विनाशमें समर्थ हों और उनके द्वारा अखिल विश्वकी सम्पत्ति मुझे ही मिल जाय । आज वही उदाहरणीय समझता जाता है; यद्यपि इस बातका ज्ञान न होनेसे यह समाज भी उपहास पात्र ही है कि यदि सभी आदमी परस्परके विनाशकी ही इच्छा करेंगे तो कब ? कैसे ? किसको ? सुखकी प्राप्ति होगी, जनता तो आपसमें सदा लड़ती ही मरती रहेगी। इस लेखमें इस विषयका विस्तार करना हमें इष्ट नहीं है; उक्त कतिपय बातोंके दिग्दर्शन करानेका तात्पर्य केवल इतना ही है कि वर्तमान शिक्षाके कुप्रभावसे तथा भारतीय शिक्षाप्रणालीके प्रचाराभावसे जनताअधिकांश उन्मार्ग-गामिनी बनती जाती है जिससे सुखमय संसार दुःखमय बनता जाता है।

यह सब कुछ होनेपर भी भारतवर्षके तपोमूर्ति महर्षियोंके प्रभावसे तथा अनादिकाल-प्रचलित अपौरुषेय-वेद—भगवान् तथा भगवती-स्मृतियोंके अल्पस्वल्प सञ्चारसे; इनपर विश्वास रखनेवाले हिन्दु अबतक भी अपने धार्मिक जीवनको सुरक्षित रक्खे हुए हैं और भविष्यमें भी सुरक्षित रक्खेंगे। ऐसा विघ्न तो समय २ पर उपस्थित होता ही रहता है। चार्वाक, हिरण्यकशिपु, यवन आदिकृत विघ्न भी तो आ चुके हैं। सत्कर्मोंके "ऊपर आपत्तियाँ आती ही रहती हैं" यह हिन्दुओंका सर्वसामान्य सिद्धान्त है कि—श्रेयांसि बहु विघ्नानि। पहले भी हिन्दुधर्मके ऊपर बार २ आपत्तियाँ आयी हैं; वे तत्तत्कालीन महर्षि—वृन्द, आचार्यगण और विद्वानोंके प्रभावसे दूर हुई हैं। भट्टपाद श्री कुमारिलभट्ट, पूज्यपाद श्रीशंकराचार्य, पूज्यपाद श्रीरामानुजाचार्य, पूज्यपाद श्रीमाधवाचार्य, (श्री आनन्दतीर्थ) पूज्यपाद श्रीवल्लभाचार्य, पूज्यपाद श्री निम्बार्काचार्य तथा श्रीहर्षवाचस्पति मिश्र प्रभृति विद्वान् एवं अनेक सन्त महन्तोंने अपने २ समयमें समयानुकूल उपायोंसे विघ्न-बाधाओंको दूरकर धर्म भगवान्‌की सेवाकी है। धार्मिक क्षेत्रमें श्रीरामानन्द स्वामी, श्रीसहजानन्द स्वामी, श्री तुलसीदासजी, श्रीसमर्थरामदासजी आदिके नाम भी सदा उल्लेखनीय हैं। घोरतम आपत्तिके आनेपर तो जगन्नियन्ता श्रीभगवान् ही अवतार धारणकर इसकी रक्षा करते हैं। इस समयके आचार्य और विद्वानोंका भी यह अधिकारप्राप्त कर्तव्य है कि यथाशक्ति धर्म-भगवान्‌की सेवा करें और इस सेवाको ही अपना प्रधान कर्तव्य समझें।

अबतक कतिपय श्रोतृवृन्द स्पष्टरूपसे यह नहीं समझ सके होंगे कि वर्णाश्रमस्वराज्य-संघकी स्थापना किस लिये अत्यावश्यक मानी गयी है। उसे हम यहाँ स्पष्टरूपसे जता देना अपना कर्तव्य समझते हैं। हम यह पहले ही कह चुके हैं कि जनताके ऊपर परकीय शिक्षाके प्रभावके अत्यधिक पड़ जानेसे जनता कर्तव्याकर्तव्यके विवेकमें भूल करती है। यह व्यवहार स्वाभाविक है कि भूला हुआ व्यक्ति अपनेको भूला हुआ न मानकर, अपने विचारसे विपरीत परन्तु सत्यके उपदेशकको ही भूला हुआ मानता है; उसी भ्रमका इस देशमें यह अवांछनीय कुत्सित फल होरहा है कि धर्मके ऊपर अधर्म आक्रमण करता जाता है। इसी प्रथाके अनुसार काँग्रेस आदि सभाओंके द्वारा तथा कौंसिलोंके द्वारा हिन्दुधर्मके ऊपर बारबार आपत्ति लायी जाने लगी, और संस्कृतसे सर्वथा अनभिज्ञ, सन्मान-मदोन्मत्त लीडर लोगोंकी यह घोषणा होने लगी कि हिन्दु धर्मका प्रचलित रूप शास्त्र-विरुद्ध है; हिन्दुधर्ममें उच्च नीचकी व्यवस्था होनेसे वह अव्यवहार्य बन रहा है; स्त्रियोंके लिये हिन्दुधर्ममें स्थान नहीं है आदि० इस समय इतनेही आक्षेप नहीं किये जाते, उनकी-संख्या इतनी अधिक है कि उनका परिगणन करना असंभव है तो भी यहां सक्षेपमें इतनाही कह देना पर्याप्त एवं अत्यावश्यक है कि जिस २ लीडरके मनको जो २ ऊटपटांग बातें पसन्द आने लगीं हैं, वह शास्त्रीय मार्गको त्याग कर हिन्दुत्वविनाशक उन्हीं बातोंके प्रचारार्थ आकाश पाताल एक करने लगा है; और उनको बनानेके लिये काँग्रेस या एसेम्बलीका शरण लेना अत्यावश्यक समझने लगा है। यह उत्पात पहले धीरे २ बढ़ता था, परंतु गांधीजीके काँग्रेसमें शामिल होनेके बादसे इसने भयानक रूप ग्रहण किया है। कभी उपवासका पाखंड, तो कभी सत्याग्रहका पाखंड, और कभी वालंटियरोंके द्वारा धरना देने आदिका पाखंड प्रस्तुत किया गया है। विचारशील पंडितोंको तथा अन्य धार्मिक हिन्दुओंको इस बातसे अत्यन्त क्लेश हुआ है कि इन धर्मशास्त्रके अनभिज्ञोंको शास्त्र मालूम है नहीं; तो भी ये यह कहकर जनताको क्यों बहकाते हैं कि प्रचलित हिन्दुधर्म धर्म-शास्त्रके विरुद्ध है। स्वराज्यका और वर्णाश्रमधर्मका किसी प्रकारका परस्पर विरोध नहीं है, तो भी ये भ्रान्त लीडर ऐसा क्यों कहते हैं कि हिन्दुधर्ममें वर्णाश्रम-व्यवस्थाके रहनेके कारण ही यह जाति स्वराज्यके

लायक नहीं समझी जाती। इस मिथ्या प्रलापके सुननेसे उत्तरदायी विद्वानोंके हृदयमें यह भी विचार उत्पन्न हुआ है कि इनके इस मिथ्या प्रलापको शीघ्र बन्द करना चाहिये। विलंब करनेसे बड़ी हानि होगी। यह हिन्दुत्वविनाशक रोग वेगसे बढ़ रहा है। लोगोंको यह समझा देना चाहिये कि काँग्रेस हिन्दु, मुसल्मान, पारसी, और खिस्तीकी संयुक्त संस्था है; इसमें हिन्दुधर्मकी चर्चा करना महा अन्याय है। तत्रापि उन लोगोंका धर्मके विषयमें हस्तक्षेप करना महान् अन्याय है, जो धर्मशास्त्र नहीं जानते। सरकार भी यह अनुचित करती है कि व्यवहार संबन्धी प्रश्नके विचारके लिये बनी एसेम्बलीमें धर्म-चर्चाको स्थान देती है तथा वह महारानी विक्टोरियाकी प्रतिज्ञाका भंग करती है।

जनता किसी एक आचार्य या किसी एक विद्वान्के कहनेपर विश्वास नहीं करेगी। इस समय एक ऐसी सभाकी आवश्यकता है कि जिसमें अनेक आचार्य, अनेक विद्वान, अनेक मठाधीश, अनेक सद्गृहस्थ, सम्मिलित होकर परिपूर्ण ऊहापोहके बाद, हिन्दुधर्मशास्त्रके रहस्यको प्रजाके समक्ष रक्खें, जिससे प्रजाका अधःपतन स्थगित हो। कुछ दिन पहले यह विचार प्रभावशाली धर्माभिमानी विद्वानोंके हृदयमें उद्बुद्ध हुआ। इनमें स्व० लक्ष्मणशास्त्रीजी द्रविड़, तथा वर्तमान तपोमूर्ति श्री पंचानन तर्करत्नजीका नाम सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। सरकार यह जानती है कि असेंबली, कौंसिल आदिमें प्रविष्ट सदस्य प्रायः धर्मसंबन्धी निर्णयमें असमर्थ हैं, तो भी इन्हींकी रायसे धर्मके ऊपर कानूनी आघात पहुंचातीहै। ऐसी सरकारका सन्मानपात्र बने रहना धर्मविरुद्ध है यह समझकर इन्हीं सर्वतन्त्र स्वतन्त्र धर्ममूर्ति विद्वानोंने महामहोपाध्यायकी पदवीका त्याग किया था।

यह तो हम भी कहेंगे कि क्या सरकार इतना भी नहीं समझती कि भारतीय धर्माधर्मका निर्णय करना उसका काम नहीं है? अवश्य समझती है। सरकार यह भी समझती है कि धर्माधर्म संबन्धी प्रश्नके उपस्थित होनेपर किन लोगोंकी सम्मति प्रामाणिक हो सकती है। सरकारको यह भी मालूम है कि धर्मशास्त्र संबंधी कानूनोंके बनानेसे जनताकी मनोवृत्तिपर उसका भयानक परिणाम होता है। सरकार यह भी सम-

झती है कि एसेम्बली या कौंसिलोंके वातावरणके प्रतिकूल होनेसे इनमें संस्कृतज्ञ विद्वानोंका प्रवेश यद्यपि असम्भव सा हो गया है, तब भी अद्यापि भारतवर्षमें संस्कृतके धुरन्धर विद्वान् विद्यमान हैं जो भली-भाँति धर्माधर्मका निर्णय कर सकते हैं। सरकारको यह भी विदित है कि एसेम्बली या कौंसिलोंमें प्रविष्ट सदस्य केवल व्यवहारके ज्ञाता हैं, और इसी प्रतिष्ठाके लोभसे यहाँ आये हैं। सरकार यह भी सुचारुरूपसे समझती है कि जो जिस विषयका ज्ञान रखता है उस विषयमें उसीका परामर्श वास्तविक होता है। ऐसी अनेक बाते हैं जिनके विषयमें यह कहा जा सकता है कि सरकार उनके सम्बन्धमें उपेक्षा करती है और अन्ततोगत्वा अपने इस हृदयका परिचय देती है कि हम विधर्मी होनेके कारण धर्म-संबन्धी बातोंमें उत्तरदायित्वपूर्ण विचार करना नहीं चाहते।

इन विद्वानोंके अथक परिश्रमसे श्रीकाशी धाममें एक सभा हुई जिसका नाम ब्राह्मण महासम्मेलन था। इस सभाके संयोजनमें भारतधर्म महामण्डलका श्लाघ्य सहयोग था। इस सभाका महान् व्ययभार कलकत्तेके मारवाड़ी गृहस्थ दुदवेवाला महाशय आदिने सहर्ष वहन किया था। इस सभामें भारतवर्षके सर्वप्रान्तसे प्रतिष्ठित विद्वान् निमन्त्रित होकर आये थे। उपस्थित विद्वानोंकी संख्या पन्द्रह सौ थी। दरभङ्गा नरेश श्रीरामेश्वरसिंहजी सभापति थे। (श्रीरामेश्वरसिंहजीने मैथिल कुल-कमल-दिवाकर दिव्य चरित आदि अपनी पदवियोंका आजन्म रक्षण किया। आपने नामाङ्कित राजा होनेपर भी अपने ब्रह्म-कर्मकी रक्षा आजन्म की। आपने देशांतर गमनसे अपने धार्मिक विचारको कभी दूषित नहीं किया है। आप संस्कृत और अंग्रेजी तथा कानूनके नामाङ्कित विद्वान् थे। आप धी, श्री, ह्री इन तीनोंके कृपापात्र थे। आपमें सरलताकी मात्रा अत्यधिक थी जिसका ही यह फल था कि आप अपने विद्वानोंके साथ भ्रातृ-भावसे बर्त्तते थे) उस सभाके स्वागताध्यक्ष काशीराज श्रीप्रभुनारायणसिंहजी थे (इनके विषयमें इतनाही कह देना पर्याप्त है कि इनके धार्मिक व्यवहारसे सन्तुष्ट काशीके विद्वान् आपको श्रीविश्वनाथजीके प्रतिनिधि मानते थे) इस सभाम शारदा पीठाधीश्वर श्रीराजराजेश्वराश्रमजी श्रीशंकराचार्यजी, सङ्केश्वरमठाधीश श्रीशिरोलकर शंकराचार्यजी, श्रीरामानुजाचार्य श्रीअनन्ताचार्यजी, श्रीरामानुजाचार्य श्रीयदुगिरि आचार्यजी, श्रीनाथद्वाराधीश्वर एवं

कांकरोली नरेश,श्रीवल्लभाचार्यजी,कोटा, काशी आदि पीठोंके आचार्य, और श्रीसन्तोजी महाराज (कुकुर मुंडा)आदि अनेक धार्मिक मठाधीश्वर संमिलित हुए थे । जो श्रीशङ्कराचार्य या श्रीरामानुजाचार्य या श्रीमाध्वाचार्य आदि आचार्य या मठाधीश पादचारी होनेसे स्वयं नहीं उपस्थित हो सके थे उन शृंगेरी कुम्भकोणम् तोताद्रि आदि आचार्यपीठोंके प्राप्ताधिकार प्रतिनिधि उपस्थित हुए थे । विशेष कहाँतक कहें, यह धर्मसभा कलियुगमें अपने ढङ्गकी पहली थी । इस सभामें प्रायः प्रचलित सब ही धार्मिक विषयोंपर प्रकाश डाला गया था । सभाकी कार्यवाही आठ दिन तक चली थी । इस सभाका निर्णय इतना सुव्यवस्थित हुआ था कि किसीको यह कहनेका अवसर नहीं रह गया कि अमुक विषयके निर्णयमें असावधानी की गयी है । यह निर्णय भारतवर्षके धार्मिकोंको सर्वतोभावेन मान्य हुआ था। संभव है कि कुछ मलीन अन्तःकरणके दुराग्रही कदाचित् इस निर्णयसे सन्तुष्ट न हुए होंगे। इस सभाके समय शारदा-बिलके आनेसे इस विषयपर विशेष ऊहापोह हुआ था, कि कन्या और वरके विवाहका समय क्या होना चाहिये । सम्पूर्ण विद्वानोंका इस विषयमें मतैक्य था कि कन्याका विवाह ऋतु आनेसे पूर्व और वरका विवाह गोदान संस्कारके बाद, अर्थात् दाढ़ी मूँछ आनेपर होना चाहिये। निष्कर्ष यह कि कन्या का विवाह १२ वर्षसे पूर्व और वरका विवाह १६ वर्षके बाद होना चाहिये। हमको यहां यह खेदके साथ कहना पड़ता है कि सरकारने सम्पूर्ण आचार्य और सर्व विद्वानोंके इस निर्णयको न मानकर कुछ धर्म-मर्मके न जानने वाले कौंसिलर या उच्छृंखलोंके कहनेसे शारदा-बिलको पास कर, हम लोगोंको यह कहनेका अवसर दिया कि सरकारका अन्तःकरण हिन्दु-धर्मके प्रति सहानुभूति नहीं रखता । सरकार हिन्दुधर्मसे हिन्दुओंको विचलित देखकर भी अपने राज--धर्मका कर्तव्य पालन करना नहीं चाहती। मिताक्षराके अनुवादमें संविद्-व्यतिक्रम प्रकरणमें सरकारने भी यह देखा होगा कि राजाओंका यह धर्म है कि अन्य धर्मकी चर्चाके उपस्थित होनेपर वह उसी धर्मके गण्यमान्य विद्वानोंसे उसका निर्णय करवावे। निर्णीत विषयको अमलमें लानेके लिये राजसत्ताका उपयोग करे । सरकार यह कहकर अपने उत्तर-

दायित्वसे छुट्टी नहीं पा सकती, कि हमने हिन्दुओंकी सलाहसे ही शारदा बिलको पास किया था। क्या सरकारको यह मालूम नहीं है, कि हिन्दू धर्मके मर्मका ज्ञाता हरविलास शारदा, या अन्य मेम्बर या हो हल्ला मचानेवाले सुधारक (संहारक-) हो सकते हैं, या भारतवर्षके धर्माचार्य और संस्कृतके विद्वान् हैं? यह बात तो स्पष्ट है, कि हिन्दुओंके धर्मके नेता ये कौंसिलर नहीं हैं। सरकारको अपने स्वार्थकी बातोंका पता लगाना होता है, तो सरकार पाताल गृहमें रहकर अपने विरुद्ध बात करनेवालोंका पता लगा लेती है; और इस बातका सरकारको पता नहीं है कि भारतवर्ष में कितने आचार्य-पीठ और संस्कृत महाविद्यालय हैं, जिनका एक मात्र कर्तव्य धर्माधर्मका अनुशीलन और धर्म-ग्रन्थोंका अध्ययन ही है। धर्मका प्रश्न प्रस्तुत होनेपर उनसे पूछा जाय, (ब्रा०म० सम्मेलनके निर्णयकी पुस्तक छपी है। जिज्ञासु सज्जन विशेष इतिवृत्त उसीसे जान सकते हैं।)

उक्त सभाके सम्पन्न हो जानेके बाद स्वामी दयानंद सरस्वती बी० ए० और महामहोपाध्याय पं०गिरधरशर्मा चतुर्वेदी आदि विद्वानोंकी यह संमति हुई कि एक ऐसी सभाका निर्माण किया जाय जिसके अधिवेशन प्रतिवर्ष, और विशेषाधिवेशन समय समय पर हुआ करें। उसी सभाके द्वारा वर्णाश्रम धमका प्रचार जारी रक्खा जाय। सभाकी रचना ऐसी हो, जो किसी सम्प्रदायके हिन्दुओंको एक देशी न मालूम हो। इस उपादेय सलाहको मानकर आचार्य, विद्वान् और सद्गृहस्थोंकी सम्मति ली गई; जो कि सभाके पक्षमें निर्विरोध अनुकूल पड़ी। जगन्नियन्ताकी कृपासे सभाकी भी स्थापना हुई। सभाका नाम रक्खा गया "वर्णाश्रम स्वराज्य संघ।" सभाका उद्देश्य सभाके नामसे ही विदित हो जाता है। विशेष जाननेकी इच्छावाले सज्जन सभाकी नियमावली देखें। संघके छः अधिवेशन देहली प्रयागराज, मद्रास, जलगांव, कलकत्ता और बम्बई में हो चुके हैं। गुरुवायूर और दिल्लीमें विशेषाधिवेशन भी हो चुके हैं। यह सातवां अधिवेशन अहमदाबादमें आपके समक्ष हो रहा है। हमें यहां यह भी जता देना आवश्यक मालूम होता है, कि संघकी कार्यवाही में, श्रीलालाबाबू दामोदरदासजी खन्नाके प्रयत्नसे कलकत्ताके धनवानों की सहायतासे स्थापित "देवालय संरक्षण समितिसे" और "भारतमित्र" पत्रसे तथा

सेठ श्रीवल्लभदास करसनदास नाथा, सेठ श्रीदेवीदास माधवजी ठाकरसी, सेठ श्रीलच्छीरामजी चूड़ीवाले आदिके प्रयत्नसे चलाया गया " इंडियनमिरर " पत्रसे समय समय पर बहुत अधिक सहायता मिलती है।

संघकी जन्मकथा संक्षेपसे बतायी गई, अब संघने अब तक जो कुछ कार्य किया है उसका भी दिग्दर्शन करा देना यहां आवश्यक मालूम होता है। संघ ने जन्म लेते ही बहुत वेगसे अपने कर्त्तव्य-क्षेत्रमें उतर कर अनेक चमत्कारिक कार्योंको कर बताया है। सनातनधर्मके नामपर श्रीमालवीयजीने जो वेदमाता, गायत्री और पिता ॐकारको अनधिकारियोंके यहां, संयत कर दुःखी बनाना चाहा था, उस मालवीयजीके साहसको संघने धरातलशायी बनाया है। गांधीजीने अस्पृश्यतानिवारण और अधिकार विरुद्ध मंदिर-प्रवेश प्रचारसे, जो हिन्दु-वर्णाश्रम धर्मका नाश करना चाहा था, उस गांधीजीके प्रत्येक मनोरथोंको संघने असफल बनाया है। गांधीजीने एक चमारिनके साथ एक ब्राह्मणका और एक ब्राह्मणीके साथ अपने लड़केका जोड़ा बनाकर इसी आदर्शके आधारपर वर्णाश्रम-धर्मके नाशका जो अधम प्रयत्न किया था; उस गांधीजीको भी पश्चात्ताप करनेके लिये संघने ही बाधित किया है। जनताको यह मालूम है कि अब गांधीजी यह कहनेका साहस नहीं करते हैं कि हम वर्णाश्रमधर्मका अस्तित्व मिटाना चाहते हैं। अब वे छद्म भाषाके द्वारा अपनेको हिन्दुधर्माभिमानी सिद्ध करनेकी चेष्टा करने लगे हैं, संघने सबसे बड़ा पराक्रम यह किया है कि कांग्रेस जैसी सभाको इस पश्चात्ताप करनेके लिये बाधित किया है, कि सर्व जातिकी पोलिटिकल सभा कांग्रेसमें हिन्दुधर्मके विरुद्ध चर्चा अबतक की गयी, वह कांग्रेसकी नीतिके विरुद्ध थी। यद्यपि कांग्रेस लज्जावश इस पश्चात्तापकी घोषणा स्पष्टरूपसे नहीं करती है, तौ भी इस वर्षकी उसकी कायवाहीसे यह अनुमान किया जाता है कि कांग्रेस अब यह समझने लगी है, कि कांग्रेसमें धर्म विरुद्ध चर्चाके आनेसे उसे बहुत बड़ी क्षति हुई है। संघके और भी अनेक ऐसे कार्य हैं जिनकी जानकारी संघकी रिपोर्टोंसे हो सकती है। भविष्यमें संघके कर्तव्यका निर्धारण करनेके लिये हम लोग यहां एकत्रित हुए हैं, उसका भी संक्षेपरूपसे निर्देश करना हमारा कर्तव्य है तौ भी इसके पहिले हम कतिपय उन मिथ्या आक्षेपोंका उत्तर करना प्राप्त

काल समझते हैं, जिनमें कतिपयका निर्देश संक्षेपसे ऊपर किया गया है और बाकीका यहां किया जायगा।

हिन्दू धर्ममें फूट डालनेके लिये जो यह अफवाह फैलायी जाती है, कि इस धर्ममें स्त्रियोंका योग्य स्थान नहीं है, यह सर्वथा मिथ्या है। हम जहाँतक समझते हैं इस संबन्धमें वह यह है कि हिन्दू धर्ममें स्त्रियोंके सन्मानका जैसा स्थान है वैसा अन्य किसी देशमें या धर्ममें नहीं है। हिन्दुओंका यह सिद्धान्त है कि "न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते" अर्थात् गृहका नाम गृह नहीं है। गृहिणीका नाम गृह। इस सिद्धान्तका सारांश यह है कि केवल गृहके रहनेसे ही विश्राम सुख नहीं प्राप्त होता है, किन्तु गृहिणी सहित गृहमें ही वह आनन्द प्राप्त होता है। सारांश यह कि यदि गृहिणी हो तो गृहमें रहना सुख है, अच्छा है, नहीं तो जङ्गलका ही सेवन सुखप्रद है। हिन्दू धर्मका एक सिद्धान्त यह भी है, कि पुरुषोंको चाहिये कि पुरुषार्थसे धन पैदा कर उसको लाके स्त्रीको देदें। व्यय किस प्रकार करना, यह अधिकार स्त्रीको है। इस सिद्धान्तका रहस्य यह है कि हिन्दुओंकी स्त्रियां केवल कुछ कालके लिये लौकिक सुखके लिये ठेके पर नहीं रक्खी जातीं; किन्तु वे आजन्मके लिये हैं, पुरुषोंके अंग होनेसे विश्वासपात्र सलाहकार हैं, बैंक हैं, घरके प्रबन्धकी सर्वेसर्वा हैं। हिन्दू धर्ममें यह भी उपदेश है कि जिस गृहकी गृहलक्ष्मी स्त्री दुखी रहती है वह गृह दरिद्रता आदि अनेक क्लेशोंका अनुभव कर अन्तमें नष्ट हो जाता है। श्रोतृवृन्द ! आप विचार कीजिये कि इतना बड़ा स्त्रियोंका सत्कार किस देशमें है। वह अन्य देशमें या अन्य धर्ममें कहां है? और हो भी कैसे सकता है? अन्य देशकी स्त्रियोंका मान तो धर्मके नाते है नहीं; वहां तो मान है उनके सौन्दर्यका। वह यदि म नोनीत नहीं हुआ तो स्त्रियां हेय समझी जाती हैं, त्याग दी जाती हैं। हिन्दू धर्ममें जो स्त्रियोंकी पराधीनताका वर्णन है उसका एक मात्र रहस्य यह है कि स्त्रियां व्यभिचारिणी न होने पावें। व्यभिचार और वर्णसंकरता जहां है वहां हिन्दू-धर्म टिक नहीं सकता। हिन्दू धर्ममें वर्णधर्म ही विशिष्टधर्म है। हिन्दुओंका यह मुद्रालेख है कि व्यभिचार आदिसे यदि स्त्रियां दूषित हो गईं तो जानो कि हिन्दुओंका सर्वनाश हो गया। यही कारण है कि उनकी रक्षाका विशेष प्रयत्न किया गया है। हिन्दू लोग इस वचनको

माननेके लिये प्रतिज्ञाबद्ध हैं कि " स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च । स्वं च धर्मं प्रयत्नेन, जायां रक्षन् हि रक्षति " हिन्दुधर्ममें पुरुषके ऊपर भी इस सम्बन्धमें धर्मका अंकुश पूर्णरूपसे रक्खा गया है। दुर्भावसे परपत्नीके निरीक्षणतकको अधम कहा गया है, तथापि स्त्रियोंके ऊपर विशेषता इस लिये रक्खी गयी है,कि स्त्रियोंमें गर्भ-ग्रहणकी योग्यता रहनेसे, उनके विचलित होनेसे, उनका और कुलका नाश अवश्यंभावी है । कितने लोग यह कह कर अपनी अल्पज्ञताका परिचय देते हैं कि हिन्दूसभ्यतामें स्त्रियोंका कार्यक्षेत्र अति संकुचित है । ऐसे विकृत मस्तकके लोगोंको स्पष्ट होन पर भी यह नहीं दिखायी देता है, कि स्त्रियोंका कार्यक्षेत्र संकुचित होना ही चाहिये । क्या स्त्रियां छ महीनेके गर्भको लेकर या एक मासके बच्चेको बगलमें दबाकर रणसंग्राममें उतर सकती हैं ? या खेती कर सकती हैं ? या कोयलोंकी गोनको आगबोटसे स्थलपर या स्थलसे आगबोट पर रख सकतीं हैं ? कभी नहीं । प्रकृतिने स्त्रियोंको यह अधिकार दिया है कि वे अपने कर्तव्य क्षेत्र को अलग नियत कर लें । यही तो कारण है कि दम्पतिके समागम होने पर स्त्रियां ही गर्भ धारण करती हैं । अन्नके अधिक खाने पर भी पुरुषोंके स्तनोंमें नाम मात्रका भी दूध नहीं होता और आहारके न्यून होने पर भी स्त्रियोंके स्तनमें दूध की धारा बालकोंकोके लिये सदा बहती रहती है । कितने सज्जन बुद्धिके अजीण हो जानसे यह कहा करते हैं कि हिन्दुधर्ममें कन्याओंका दाय (हक्क) नहीं है यह एक त्रुटि है । खेदके साथ कहना पड़ता है कि इस दर्जेके बकबादी बुद्धिमानोंको यह नहीं विदित होता, कि दम्पतियोंके मेलसे एक सन्तान-साधक जोड़ा बनता है। यदि हम अपनी लड़कीको भागीदार समझेंगे तो मेरा लड़का भी किसीकी लड़कीका पति बनेगा, उस लड़कीका भाग मुझे ग्रहण करना पड़ेगा । इस व्यवहारसे किस लाभ की सम्भावना है।अपना स्टेट दूसरेके पासजाय दूसरेका अपने पास आवे विचार करनेसे इस लेन देनसे तो उलटी हानि ही है। स्पष्ट व्यवहार तो यह है कि जिसकी लड़की आवेगी वह मेरे घरकी मालिकन बनेगी और मेरी लड़की जहां जायगी उस घरकी मालिकन बनेगी। लड़कियोंके भागीदार होनम तो उनकी ही हानि है। भागीदार होने पर वे उस सत्कारका पात्र नहीं समझी जायगीं, जिस सत्कारका पात्र वह बिन भागी-

दार होनेपर समझी जाती हैं। हिन्दुओंमें तो यह प्रथा है कि अधिक धन व्ययकर अपनेसे द्विगुण धनवान्के यहां सभ्य हिन्दू कन्यादान करते हैं। कितने जल्दीबाज यह कहकर लोगोंमें भ्रम फैलाते हैं कि हिंदू लोग कन्याओंका विवाह बहुत जल्दी कर डालते हैं। इसका उत्तर आ चुका है, कि हिंदू वर्णसंकरतासे अलग रहना चाहते हैं। हिंदू यह कभी नहीं चाहते कि बहुत बड़ी उमर तक सरकसके खिलाड़ियोंके समान वेष धारणकर लड़का लड़की एक साथ पढ़ें, ब्रह्मचर्यको भ्रष्ट करें, फिर अन्तमें विवाहका नाटक किया जाय, यह भी कहना अपनी अल्पज्ञताका परिचय देना है, कि कम उमरमें सम्बन्ध होनेसे सन्तान कमजोर होती है। सन्तानकी कमजोरीका कारण दूसरा ही है। हिंदुधर्म—शास्त्र वैद्यक-शास्त्र इन दोनोंका यह सिद्धान्त है कि दम्पतिको ऋतुगामी होना चाहिये। रजोधर्म होनेके बाद पांचवी रातसे सोलहवीं रात तक बारह दिनका समय ऋतुकाल कहा जाता है, इसमें एक दिनके अन्तरसे दम्पतिको संयुक्त होना चाहिये अर्थात् एक मासमें अधिकसे अधिक ६ रात्रियोंमें एक एक वार दम्पति समागम हिंदुधर्म शास्त्रमें विहित है। इस आज्ञाके पालन न होनेसे सन्तानमें दुर्बलता, दुर्जनता, आदि दोष आजाते हैं। इसी नियमके पालनसे पहिले जमानेमें सदाचारी और धुरन्धर वीर उत्पन्न होते थे। आजकल बड़ी उमरमें प्रायः ब्रह्मचर्यके नष्ट होजाने पर जो विवाह होता है उसका परिणाम यह होता है कि दम्पती कबूतरोंके समान सहवास करते हैं और प्रतिवर्ष केलेन्डरोंकी तरह कमजोर सन्तान पैदा किया करते हैं। इस विषयका वर्णन पंडित शालिग्रामजीने (संस्कृत प्रचारिणी पाठशाला मुंबईके अध्यापकने) अच्छा किया है। उन्होंने अपने भ्रान्तभारत नाटकमें लिखा है कि "एकश्चतुष्पादिव कम्पतेऽर्भो दोर्भ्यां गृहीत्वा वसनं जनन्याः। अन्यस्तदङ्के करुणं विरौति दैवं विनिन्दत्यपरस्तु गर्भे" (एक लड़का दुर्बल होनेके कारण चौपायाकी तरह माताके कपड़ेका छेड़ा पकड़कर कांप रहा है, दूसरा उसकी गोदमें रो रहा है, तीसरा गर्भमें अपने भाग्यको कोस रहा है, कि हे भगवन्! दो तो तलमलाही रहे हैं, बाहर निकलनेपर मेरी गति कैसी होगी?)कितने लोग "ऊनषोड़शवर्षायाम्" इस सुश्रुत की दोहाई देकर जनतामें यह भ्रम फैलाना चाहते हैं कि

स्त्रियोंकी १६ वर्षसे पहिलेकी सन्तान मरजाती हैं या बहुत कमजोर होती हैं। यह कहनेवालोंमें ही बहुतसे ऐसे निकल आवेंगे जिनके जन्म कालमें माताकी उमर १६ बर्षसे कम और पिताकी उमर २५ वर्षसे कम होगी। इन लोगोंको यह नहीं मालूम है कि सुश्रुतकारने ही यह स्पष्ट लिखा है कि ऋतुके आजानेके बाद दम्पति समागम विहित है योग्य है। " ऊनषोडशवर्षायाम् " इस लेखका आशय जाननेके लिए किसी अनुभवी अध्यापकका आश्रय लेना चाहिये। बम्बईके सुप्रसिद्ध विद्वान् वैद्यराज यादवजी त्रिकमजी आचार्यको एक लिखित पुस्तकमें जो पाठ मिला है वह ऐसा है कि "ऊनद्वादशवर्षायाम्"। अस्तु यही पाठ रहे कि " ऊनषोडश वर्षायाम् "। इससे सिद्धान्तकी क्षति नहीं होने वाली है। यह फलश्रुति है। इस लेखसे दम्पति-समागमके कालका निर्णय नहीं किया जासकता। सुश्रुत कारने एक जगह यह लिखा है कि ऋतुकालकी बारह रात्रियोंमें यदि पहिलेकी छः रात्रियोंमें गर्भाधान हो तो उसगर्भकी सन्तान कमजोर होती है, और उत्तरकी छः रात्रियोंकी सन्तान पुष्ट होती हैं। क्या इस फल श्रुतिसे यह निर्णय किया जासकता है, कि ऋतु होनेके बाद दस रात्रियोंके वीत जाने पर ही दम्पति समागम होना चाहिये। अर्थात् महीनेमें तीन रात्रियोंमेंही दम्पतिसमागम होना चाहिये। इस फलश्रुतिस तो यही सिद्ध होता है कि पूर्व पूर्व रात्रियोंकी अपेक्षा उत्तरोत्तर रात्रियोंका गर्भ-पुष्ट-सन्तान प्रद होता है। यहां तो यह भी प्रश्न होसकता है कि अतिपुष्ट संतानकी कामना वालेको क्या मासमें एकही दिन दम्पति समागम होना चाहिये?। यदि इस फलश्रुतिके संबंधमें यह कहा जाय कि यह भाग्याधीन रहा गर्भका वर्णन मात्र है, दम्पतिके समागम मात्रसे ही तो गर्भाधान होता नहीं, इसमें भाग्यका भी सहयोग चाहिए, तो " ऊनषोड़शवर्षायाम् " इस फलश्रुतिका भी यही उत्तर होगा कि भाग्याधीन रह गया गर्भकी सन्तानका केवल यह वर्णनमात्र है। दम्पति समागम मात्रसे ही गर्भ तो रहता नहीं। स्त्रियोंके संबंधमें किये गये कुतर्कोंके समाधान सरल हैं कारण कि ये सबही कुतर्कोंके उत्थापक लोग संस्कृतके व्युत्पन्न विद्वान् नहीं हैं। हमारे पास भी इस विषयकी हुज्जत करनेवाले कुछ ऐसे सज्जन आते, हैं जो समझानेपर भी इस बात को नहीं समझते।

एक सज्जनने तो "गर्भाधान योग्य कालमें दम्पति समागम होना चाहिये" इस आशयकी श्रीकुल्लुकभट्टकी टीकासे ही यह सिद्धान्त निकाला है कि १५-१६ वर्षकी अवस्थामें कन्याओंका विवाह होना चाहिये। इस तार्किकके मतमें गर्भाधान योग्य काल १५ वां या १६ वां वर्ष है। इसके पहिले गर्भाधान होता ही नहीं, यह इनका मानना है, फिर इन्हींसे यह पूछना चाहिये कि यदि इस समयसे पहिले गर्भाधान होता ही नहीं तो शास्त्रकी आज्ञासे योग्य कालमें विवाह क्यों न कर दिया जाय ?। इस महोदयके पुस्तकमें "त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्" यह पाठ है कि नहीं सो हमें मालूम नहीं। इस महाशयसे इतना ही कहना बस है कि आपके पास अवकाश हो तो नामांकित पहलवानोंसे पूछ आइये कि आप लोगोंकी माताओंका विवाह किस उमरमें हुआ था, या उन जङ्गली भीलोंका दर्शन कर आइये और उनसे भी पूछ आइये कि आपकी माताका विवाह किस उमरमें हुआ था, जो बलवान् जङ्गली जङ्गली जानवरोंको भी धर पछाड़ते हैं। इस सम्बन्धमें श्रोताओंसे फिर भी हमें वही अपनी कहानी कहनी पड़ती है कि सन्तानके बलाबलका प्रश्न चिन्ता भाग्य और संयमसे सम्बन्ध रखता है न कि विवाहसे,ऐसे२ आजकल अनेक प्रकारके कुतर्क किये जाते हैं। उन सबके उत्तरसे एक नया महाभारत तैयार हो सकता है। अब हम केवल वर्णाश्रमके सम्बन्धमेंही कुछ कह कर धार्मिक प्रकरणको सम्पन्न कर देना चाहते हैं। वर्णाश्रम व्यवस्था भारत वर्षमें अनादि कालसे प्रचलित है। यह कोई नई व्यवस्था या घटना नहीं है, कि इसके ऊपर विशेष ऊहापोहकी आवश्यकता हो। इस देशने इसी वर्णाश्रम व्यवस्थाके आधार पर गरीबी हालतमें रहने पर भी अद्यापि अपने जीवनको सुखमय बना रक्खा है। इस वर्ण व्यवस्था ही का यह सुफल है कि यहां गरीब धनी छोट बड़े सब ही लोग प्रायः दाम्पत्य सुखका अनुभव करते हैं। यह सुख दूसरे देशोंमें सर्व साधारणको नहीं प्राप्त होता। अन्य देशोंकी हवा लगनसे इस देशमें भी, अब ऐसी निन्दित सन्तान उत्पन्न होने लगी ह, जो इस सुखके अन्त करनेमें ही अपनी बहादुरी मानती हैं। भारतवर्षमें समय समय पर अनेक जातिके और अनेक स्वभावके शासक हो गये हैं, तो भी वर्णव्यवस्था यहां अद्यावधि बनी हुई है।

ब्राह्मण जात्या श्रेष्ठ माने जाते हैं तौ भी उनका कर्तव्य और शरीर-यात्रा आरम्भसे ही कष्टमय चली आती है। केवल धर्ममें प्रेम होनेके कारण ही ये आज तक उससे विचलित नहीं हुए हैं। अधिकारकी दृष्टिसे क्षत्रियोंका पद बहुत ऊंचा है, तौ भी उनका कर्तव्यभार इतना गम्भीर है, कि समय २ पर उनको अपने प्राणोंकी आहुतिसे उसे सम्पन्न करना पड़ता है। वैश्योंकी सम्पत्ति सदासे इस देशमें अधिक होती आयी है, तौ भी आजतक किसीने यह स्पर्धा नहीं की है कि येही पूँजीपति क्यों बने रहते हैं। वैश्योंने भी समय २ पर आवश्यकता आनेपर प्राणके समान अपने ऐश्वर्यका उपयोग जनताके लिये किया है। शूद्र जातिओंमें अच्छे अच्छे देशभक्त हुए हैं, उन लोगोंने ऊपरकी तीन जातियोंकी सेवाके द्वारा देशसेवा की है। इन जातियोंमें विचार पूर्वक देखा जाय तो सुखकी मात्रा किसीसे कम नहीं है। सुख और चिन्ता इन दोनोंका गो व्याघ्रकी तरह सदा स्वाभाविक बैर रहता है, चिन्ताओंमें भी भोजन प्राणरक्षा और द्रव्यरक्षाकी चिन्ता भारी मानी जाती है जो कि ऊपरकी तीन जातिओंमें क्रमसे रहती है। शूद्रोंमें चिन्ताकी मात्रा बहुत कम रहती है। हिन्दुधर्ममें यह आज्ञा है कि सब सेवकोंकी भोजन व्यवस्था हो जानेके बाद ही गृहपति दम्पतिका भोजन होना चाहिये। इसी उदार वर्णाश्रमके प्रबन्धका यह फल है, कि इस देशमें केवल जाति भेदके कारण वैर विरोध या ऐतिहासिक संग्रामका होना नहीं पाया जाता। यहां जो बड़े बड़े संग्राम हुए हैं उनका कारण नैतिक स्वार्थ ही रहा है। मेरे इस कथनका साक्षी राम रावण युद्ध, या महाभारतका संग्राम विद्यमान है। अब जो जातियोंमें कहीं २ तत्प्रयुक्त अनबनाव देखनेमें आता है, वह वर्णभेदके कारण नहीं है, इसका कारण है विधर्मी शिक्षा। जबसे इसका प्रवेश हुआ है, तबसे ही जाति भेद प्रयुक्त कलहका शहरोंमें जन्म हुआ है, छोटे छोटे गांव अबतक इस दोषसे मुक्त हैं, यह आशंका जरूर है, कि गांधीजीके ग्राम्यपर्यटनके बाद वे अभागे गांव भी इस कलहके अखाड़े बन जायंगे। यह बात बिलकुल मिथ्या है, कपोल कल्पना है कि वर्ण व्यवस्थाके रहनेसे यह देश स्वराज्यके लायक नहीं माना जाता।

इन वर्णोंके अलावा इस देशमें अन्तराल जातियां वर्णसंकरताके कारण बन गयी हैं। अनादिकालसे प्रचलित इस सृष्टिमें इनका भी अस्तित्व

अनादिकालसे ही माना जाता है, कारण कि यह निर्णय अशक्य है, कि किस समयमें किस वर्णसंकर जातिकी उत्पत्ति हुई। इन जातियोंकी जीविकाका प्रबन्ध भी धर्मशास्त्रोंमें बताया गया है। बहुत लोगोंकी यह आशङ्का धर्मशास्त्र विरुद्ध तथा तर्कविरुद्ध है कि आरम्भमें जो वर्णसंकर जिस भांति उत्पन्न हुआ वह भले ही जन्मना शास्त्रीय नियमानुसार उस जातिका माना जाय, परन्तु उनकी परम्परा भी उसी जाति की होती है इसमें प्रमाण नहीं मिलता। उच्च जातिकी कन्या छोटी जातिके पुरुषसे यदि सन्तान उत्पन्न करती है तो वह सन्तान शास्त्रके आधारसे अन्त्यज उत्पन्न होती है, परन्तु परस्परसे उत्पन्न उन अन्त्यज की सन्तान--परम्परा अन्त्यज क्यों कही जाय ?

यहां उक्त तार्किकोंको यह समझना चाहिये कि सन्तान-परम्पराकी भी वही जाति होगी जो कि प्रथम अन्त्यजकी है। घोड़े और गर्दभी से खच्चर पैदा होते हैं। आगे चलकर खच्चर ही नरमादेसे उत्पन्न हुई सन्तान भी खच्चर ही होती है। गोमयमें घोड़ा या गर्दभके मूत्रके पड़नेसे वृश्चिक उत्पन्न होते हैं। आगे चलकर सजातीय नरमादासे उत्पन्न हुई सन्तान भी वृश्चिक ही होती है। शास्त्रोंकी आज्ञा भी ऐसी ही है। यह समझ लेना बहुत सहज बात है, कि सजातीय दंपतिसे सजातीय सन्ततिकी उत्पत्ति होती है। विजातीय दम्पतिसे अन्य जातीय संतति की उत्पत्ति होती है। सिद्धान्त में तो सन्तानों की जातिके निर्णय का आधार एक मात्र शास्त्र ही है। शास्त्रोंमें प्रायः निर्णय मिलता है। जहां नहीं भी मिलता है वहांके लिये निर्णयकी प्रक्रिया बतायी गई है। जो लोग यह समझे बैठे हैं, कि नीच कर्मके करने से ही अन्त्यज वर्ग अपवित्र माना जाता है,उनकी यह समझ भूल है। नीच योनिके पानेसे अन्त्यज नीच कर्मके अधिकारी माने गये हैं या अस्पृश्य माने जाते हैं। अस्पृश्यताके रहस्यसे अपरिचित कई हवाई ख्यालके लोग तो यहां तक कह डालते हैं, कि यदि मलके माजन से ही अन्त्यज अस्पृश्य माने जाते हैं, तो मातायें भी तो अपनी सन्तानोंके मलका मार्जन करती हैं, वे क्यों नहीं अस्पृश्य मानी जायं ? इस हुज्जतका उत्तर दिया गया है, कि मलमार्जनके कारण अस्पृश्य नहीं माने जाते। अस्पृश्य होनेके कारण उनको मल मार्जनका काम

दिया गया है। थोड़ी देरके लिये "तुष्यतु दुर्जनः" इस न्यायसे इस हुज्जतका आदर भी किया जाय, तो भी यह नहीं सिद्ध होता, कि मातायें और चाण्डाल एक समान हैं। चाण्डाल सर्वसाधारणका मल सदासे जीविकाके लिये साफ़ करता आता है, माताओंमें यह बात नहीं है। यदि मलके सफाई मात्रसे ही अस्पृश्यता बनती हो तो, यह भी कहना संगत हो जायगा, कि जीविकाके वास्ते सर्वसाधारणके साथ सहवास करनेवाली वेश्यायें और दाम्पत्यधर्मका निर्वाह करनेवाली मातायें किसी अंशमें समान होनेसे एक समान दुराचारिणी मानी जा सकती हैं। एक दयालु लेक्चरार वृद्धने एक वार जोशमें आकर अपने व्याख्यान में यह कहा था कि शूद्र उस भगवान् के चरणारविन्दसे उत्पन्न हैं, जहांसे कि पतित पावनी गंगा उत्पन्न हुई हैं। परन्तु इस वृद्धको यह नहीं मालूम होता है, कि समान स्थानसे उत्पन्न होनेके कारण ही एक समान पवित्रता या अपवित्रता नहीं होती है। जिस स्थानसे सन्तानकी उत्पत्ति होती है, जिस सन्तानके मुख चुम्बनसे पिताको आनन्द होता है, उसी स्थानसे प्रति दिन अपवित्र कई घृणित पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जो हुज्जतबाजोंके मतसे भी पवित्र नहीं माने, जाते। हम यहाँ कुतर्कोंका विस्तार या उनका उत्तर कर आप लोगोंका समय व्यर्थ बिताना नहीं चाहते, हम तो केवल उसी सिद्धान्तको फिर भी दुहरा देना पसन्द करते हैं कि कार्याकार्यकी व्यवस्था केवल शास्त्रके आधारसे ही हो सकती है। प्रायः भगवानकी यह आज्ञा आप लोगोंके स्मरणमें है ही कि "तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ"।

कितने लोग यह कहकर जनताको सन्देहमें डालते हैं कि सदा उच्च, उच्च ही रहेंगे और अछूत, अछूत ही रहेंगे, यह तो अन्याय मालूम होता है। यह कथन केवल निर्मूल और निःसार है। शास्त्रोंमें या हिन्दू सभ्यतामें यह सिद्धान्त कहीं नहीं मान्य किया गया है, कि उच्च मर कर उच्च जाति ही में जन्म लेता है और अछूत मरकर अछूत जातिमें ही जन्म लेता है। सिद्धान्त तो यह है कि यदि उच्च, नीच कर्म करता है, तो वह जन्मान्तरमें नीच योनिकी ओर ढलता है और नीच यदि स्वधर्मका पालन करता है तो वह जन्मान्तरमें क्रमशः उच्च योनिको प्राप्त करता है। वर्ण भाड़ेका क्लास है, भाड़ा है पूर्व जन्मका कर्म, गाड़ीमें जो

जिस क्लासका भाड़ा पहले देता है, वह उस क्लासमें बैठनेकी आज्ञा पाता है। इसी तरह जो प्राणी जैसा कर्म करता है,वह वैसा अधिकार प्राप्त करता है। गाड़ीका दृष्टान्त धार्मिक नहीं है, अतः इसका परिवर्तन रोज रोज हो सकता है। जातिका प्रश्न धार्मिक है इस लिये इसका परिवर्तन जन्मान्तरमें ही होता है। अच्छूत नाराज होकर धर्मान्तर करते हैं, इस दुराग्रहका तो यही उत्तर है, कि उच्च क्यों धर्मान्तर किये हैं?

आश्रमकी चर्चा करते तो हमें भी खेद हो रहा है, कि आश्रमकी व्यवस्था अतिशिथिल हो गयी है और शनैः शनैः शिथिल होती जाती है। इस ओर हम लोगोंको सम्मिलित शक्तिसे ध्यान देना चाहिये। प्रथम आश्रमके ही शिथिल हो जानेसे उत्तरोत्तर सब ही आश्रम शिथिल होते जाते हैं। अन्य जातियोंकी कथा तो दूर रही धर्मोपजीवी ब्राह्मण भी आश्रमधर्मसे अलग होते जाते हैं। ब्रह्मचारी रहकर पठन पाठनकी व्यवस्थासे विरक्त होते जाते हैं। व्यर्थके प्रलोभनमें पड़कर शास्त्रके अध्ययनकी उपेक्षा कर अन्य विषयोंके अध्ययनमें तल्लीन होते जाते हैं। उनको इस आशंकाने अपने कर्तव्यसे विचलित कर दिया है, कि संस्कृत पढ़नेसे लाभ नहीं है। यह आशंका वास्तवमें है भी प्रचंड, तौ भी सर्वांशमें यथार्थ तो नहीं है। इतिहासमें अबतक यह उल्लेख नहीं मिलता कि संस्कृत पढ़नेके कारण या अंग्रेजी न पढ़नेके कारण अमुक आदमी दुखी हो गया। सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेसे तो यही मालूम होता है कि भारतवर्षमें अंग्रेजी पढ़नेसे जितने आदमी सुखी मिलते हैं उनसे अत्यधिक दुखी मिलते हैं। हमारे इस कथनमें प्रबल प्रमाण यह है, कि अंग्रेजी लिखे पढ़े भुखमरोंकी रक्षाके लिये अब सोसाइटियाँ बनने लगी हैं। यह भी कहना आक्षेप नहीं है कि अंग्रेजी लिखे पढ़े लोगोंका धार्मिक जीवन बहुधा शोचनीय हो जाता है। उनका आर्थिक जीवन भी परम्परागामी नहीं होता है। हमें तो यही मालूम होता है कि वर्तमान शिक्षा प्रणालीसे विशेष लाभ नहीं होता है और यह शिक्षा प्रणाली ही आश्रमधर्मको शिथिल करती जाती है। बंगाली, मद्रासी, विद्वानोंकी दरिद्रताके और व्यापारी मारवाडी, गुजरातियोंकी सपन्नताके देखनेसे यह स्पष्ट मालूम होता है कि विद्वत्तासे ही धन नहीं मिलता है। आश्रमकी रक्षाके लिये तन, मन, धनसे प्रयत्नकी आवश्यकता है।

वर्णाश्रम स्वराज्य संघने धार्मिक सेवा अच्छी की है, परन्तु देश सेवाके संबन्धमें उसकी कार्यवाही अबतक उल्लेखनीय नहीं है। यह कथन बहुत सत्य है कि देशके आबाद रहने पर ही धर्मकी व्यवस्था भी बनी रहती है। यह मानी हुई बात है कि मनुष्य दीनतावस्थामें धर्मका संरक्षण नहीं कर सकता। सच्चा धर्मात्मा भी वही होता है जो संसारके भोगसे अपनी इच्छाके अनुसार वितृष्ण होकर धर्मकार्यमें प्रवृत्त होता है। दरिद्रोंका धार्मिक वेश आदर्श भी नहीं माना जाता। असन्तुष्ट होनेसे दरिद्र व्यक्ति धर्मात्माका प्रमाणपत्र लेकर भी अपनी सत्ताका बहुधा सदुपयोग नहीं कर सकता। दारिद्र्य यह इतना बड़ा दोष है कि प्रत्येक कर्तव्योंमें विघ्न बाधा उपस्थित करता है। भारतवर्ष चिरकालसे पराधीन होनेके कारण जगत्की दृष्टिमें अधिक दरिद्र है, यह कथन सर्वथा सत्य है। जब तक इस देशमें आदर्श राजपद्धतिका स्थापन नहीं होगा वहां तक इसकी दरिद्रता दूर होनेवाली नहीं। आदर्श राजपद्धतिकी स्थापना कैसे हो सकेगी इस प्रश्नका उत्तर बहुत गंभीर है। किसी भी वस्तुकी प्राप्तिके लिये यदि यत्न करना होता है, तो उसके पहले यह सोचना पड़ता है कि जिस वस्तुकी प्राप्तिके लिये जो यत्न किया जाता है उस यत्नसे उस वस्तुकी प्राप्ति साध्य है या नहीं, और इस यत्नके कार्यमें परिणत करने पर जितनी विघ्न बाधायें उपास्थित होंगी उनको हटानेकी सामग्री हमारे पास है या नहीं। केवल उत्साहसे प्रेरित हो कर ही प्रयत्न करनेसे सफलता नहीं मिलती। केवल हो हल्ला होकर ही उद्योग की इति श्री होजाती है। भारतवर्षको यह आकांक्षा बहुत दिनोंसे उत्पन्न हुई है, कि इस देशमें आदर्श राज्यव्यवस्था प्रचलित की जाय, इसी उद्देश्यसे १८८५ में कांग्रेसका जन्म हुआ था। कांग्रेसने अपनी शक्तिके अनुसार इस विषयमें प्रयत्न किया है। जबसे कांग्रेसमें गांधीजीका प्रवेश हुआ है, तबसे यह संस्था सामान्य जनताकी दृष्टिमें कर्मण्य बनी मानी जाती है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो एक प्रकार यह संस्था बहुत पीछे हट गई है। असहयोग, सत्याग्रह आदिकी हलचलसे जो इस संस्थाकी प्रतिष्ठा बढ़ी थी वह उनके बन्द हो जानेसे नाम शेष हो गयी है। इसके लिये देशने जो करोड़ों रुपया खर्च किया है वह भी व्यर्थ हुआ है। एसेम्बलीके चुनावकी ओर दृष्टिपात करनेसे यह रहस्य प्रकाशमें आजाता है, कि जनता असह-

योगको नहीं चाहती थी। गांधीजीके व्यक्तिगत सत्याग्रही रहनेपर भी जनताने उत्साहसे वोट दिया है। इससे यह प्रमाणित होता है कि गांधीजीने असहयोगके लिये जनताको वाग्जालमें डालकर ठोकठाक कर तैयार किया था। यदि जनताको असहयोग मान्य होता तो वह एसम्बलीके चुनावमें इस तरह नहीं कूद पड़ती। कांग्रेसमें हिंदूधर्म विरुद्ध चर्चाकी नीव जो गांधीजीने डाली है यह भी प्रजाको पसन्द नहीं है। इस रहस्यका प्रकाश मंदिर—प्रवेश विलके विरुद्ध उपलब्ध जनमतसे हो जाता है। गांधीजीके गांव गांवमें घूमने पर भी मंदिर प्रवेश विलको समर्थन नहीं मिला। सारांश यह है कि भारतीय जनताको गांधीजीके ये दोनों असंगत सिद्धान्त नापसन्द हैं। जनता न तो धर्म विरुद्ध आन्दोलन चाहती है, न तो असयोगही चाहती है। इन दोनोंके लिये गांधीजीके कहनेसे धन जनकी जो बरबादी हुई है उसका उत्तरदायित्व केवल गांधीजीके ऊपर है। यह सब कुछ होने पर भी जनता आदर्श स्वराज्यकी स्थापना तो अवश्य चाहती है, इस अनुमानकी सामग्री पूर्ण रूपसे विद्यमान है। वस्तुतः अनुमानकी आवश्यकताही क्या है, निज देशका शासन निजको अनुकूल और प्रिय होता है यह तो आबालगोपालको विदित है।

देशमें स्वराज्यके लिये जो आन्दोलन किया जाता है, उसकी सफलता तबही संभावित हो सकती है, जब कि इस देशके निवासी मुसलमान यह समझने लग जांय, कि हमें भी इसी देशके जलवायुमें रहना है, यही हमारी जन्मभूमि है। कौमी चुकादा हमारे लिये भी परिणाममें दुःखदायी है। देशी नरेश और उनकी प्रजा आपसी द्वेष का उपसंहार करें। हिन्दू मुसलमान दोनों मिलकर आरम्भमें इस देशके कला कौशलकी वृद्धिका यावच्छक्य प्रयत्न करें। सरकार इसलिये बाधित की जाय, कि वह किसीके धर्ममें हस्तक्षेप न करे और शासन विभागका खर्चा कम करे। प्रजा यह समझने लगजाय कि सरकार जब जब सुधाराका नाटक करती है, तबतब देशके ऊपर खर्चाका भार चढ़ता है, परन्तु उससे देशको कुछ लाभ नहीं होता है। इस कथनकी सत्यतामें १९०९ और १९१९ का सुधारा ही प्रमाण हैं। सब लोगोंके वोटर बन जानेसे ही देशका उद्धार नहीं होने वाला है, प्रत्युत इस झंझटमें पड़नेसे व्यर्थका समय नष्ट होता है। नकली

प्रतिष्ठाकी वृद्धि होती है। हमारी राय यह है कि, इस नाटककी ओर भी उपेक्षा की जाय। जहां तक हो सके वहां तक अपने पुरुषार्थका अवलम्बन किया जाय, भारतकी प्राचीन संस्कृतिके उद्धारार्थ यावच्छक्य प्रयत्न किया जाय। यदि किसी प्रकार प्राचीन संस्कृतिका पुनरुद्धार हो जायगा तो हमारा यह विश्वास है कि यह देश फिर अति सुखी बन जायगा। भारतभूमि अपनी सन्तानोंको सुखी रखनेके लिये तैयार है। पर्याप्त अन्न जलको उत्पन्न करती है।

इस देशमें पहले पंचायतकी प्रथा थी। उसके द्वारा जनतामें उत्पन्न कलहका निवारण बड़ी सरलतासे होता था। पंचायतोंके कमजोर हो जानेसे जनता अति दुःखी होती जाती है। अदालत रूपी चक्कीमें प्रजाकी प्रतिष्ठा रेती चूनाकी तरह पीसी जाती है। किसी भी जिलामें जाओ, देखो तो अदालतोंमें कुरुक्षेत्रके संग्रामकी तरह मेला लगा रहता है। पंचायतोंकी स्थापनाके लिये संघ ही सच्चा प्रयत्न कर सकता है। यद्यपि इस कार्यमें कांग्रेसी भी अपनी तत्परता प्रकट करते हैं, तौ भी उनकी वह तत्परता नकली है। कांग्रेसके कार्यकर्ता अधिकांशमें वकील, बारिस्टर और अदालतोंके क्लार्क हैं, अथवा भावी वकील, बारिस्टर या क्लार्क हैं। उनको यह भय हो सकता है कि पंचायत प्रथाके सुव्यवस्थित हो जानेसे कहीं अदालतोंमें ताला बन्द हो गया तो जनता तो सुखी होगी सही, परन्तु हमारा निर्वाह कठिन हो जायगा। ये लोग यह समझ कर पंचायतका ऊपरी मनसे समर्थन करते हैं, कि यह व्यवस्था होनेवाली तो है नहीं, हम इससे अलग रहकर अपने भावका परिचय क्यों दें। पंचायतके सुव्यवस्थित करनेमें कांग्रेसी इस लिये भी असमर्थ हैं, कि उसका धर्मके ऊपर चाहिये जैसा विश्वास नहीं है। धर्मके ऊपर पूरा विश्वास हुए विना पंचायतकी स्थापना हो सकती नहीं, यदि होगी भी तो वह नियमित चल नहीं सकती। संघ पंचायतकी स्थापनामें यदि परिश्रम करे तो सफल हो सकता है। संघकी पंचायत-स्थापना धर्ममूलक होगी, इसके उपदेशका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। पंचायतें गांव गांवमें बनाई जांय, उनमें सर्व जातिके एक एक सदस्य नियुक्त किये जांय। वे सब ही सदस्य उस आदमीका विरोध करें, जो पंचायतका अपमान करे, पंचायतका सिद्धान्त नहीं माने, प्रभुताके कारण अदालतका शरण लेना चाहै, अदालतमें जाय, या गया

हो। यहां यह भी जान लेना आवश्यक है कि पंचायतकी सुव्यवस्थासे सरकारके कर्मचारी कदाचित मन ही मन अप्रसन्न होंगे। तथापि वे कंठरवसे यह नहीं कह सकते कि हम इससे अप्रसन्न हैं।

संघको यह भी करना पड़ेगा कि गांव गांवमें घूम घूम कर जनता को यह सिखलाना पड़ेगा कि आप लोग सचाईसे आपसी व्यवहार करें। मिथ्या चालाकीसे हानिके सिवाय लाभकी संभावना नहीं होती। जनताको यह भी सिखलाना पड़ेगा कि आप लोग अपने पूर्वजोंके आदर्शको उचित समझकर अपने जीवनको सादा और परिश्रमी बनावें। खर्चीला जीवनसे जो प्रतिष्ठा मिलती है,वह अन्तमें सदाके लिये अप्रतिष्ठित बनाती है। जनताको यह भी सिखलाना पड़ेगा, कि आपलोग परिश्रमी बनिये, जहाँ तक हो सके अपने छोटे छोटे रोजगार व्यापारको परिश्रमके साथ जीवित कीजिये। आप लोग इस निर्धन अवस्थामें क्यों आलसी बनते जाते हैं?। आलस आरामका कारण नहीं है,यह दुर्बलताका पहला हेतु है। आप लोग घर घरमें जांत चक्की, आदि शरीर-यन्त्र-साध्य कारखानोंको प्रचलित कीजिये। अपने कारखानोंसे पहिलेकी तरह चीनी तैयार कीजिये। खेतीके साधन कूप आदिका पुष्कल रूपमें निर्माण कीजिये।

इस लिये भी जनताको सचेत करना होगा कि आज कलकी विवाह प्रथा अधिक खर्चालू हो गयी है, उसको रोकना चाहिये। विवाह यह धार्मिक संस्कार है। योग्य वर कन्याका सम्बन्ध कराने वाला इस धर्मकार्यमें नाच आदि अनर्थक वस्तुओंके संग्रहके लिए अत्यधिक खर्चेकी कोई आवश्यकता नहीं है। विवाहमें खर्चाके बढ़जानेसे कई कुलीन घरकी कन्यायें पिताके घरमें ही वृद्ध हो जाती हैं। कई कुलीनोंका घर बार भी इसीमें बिक जाता है। यह प्रथा शरमा शरमीकी वजहसे प्रचलित है, तो भी इससे होने वाली हानिका अनुभव अब लोगोंको होने लगा है। जो आदमी अपने लड़कोंके विवाहमें अधिक दायज लेनेसे अथवा जो लोग वरसे कन्याके लिये डिपाझिट रखवा लेनेसे अपने को बुद्धिमान मानते हैं, उनको यह समझा देना चाहिये कि यह आपकी विद्वत्ता नहीं, बल्कि मूर्खता है। आपको भी तो अपनी कन्याके विवाहमें दायज़ देना पड़ेगा और पुत्रके विवाहमें डिपाझिट रखना पड़ेगा।

संघके आधीन एक यह भी आवश्यक कर्तव्य है कि संघ देशी राजाओं को समझानेका प्रयत्न करे। देशी राजे भी अंग्रेजी सरकारका अनुकरण करने लगे हैं, अर्थात् वे भी धर्म विरुद्ध कानूनोंको बनाकर सभ्य प्रजाका दिल दुखाने लगे हैं। देशी राजाओंको यह समझाया जाय कि आप अपने ढंगसे राज्य शासन करें। इस समय कतिपय देशी राजाओंकी परिस्थिति चिन्तनीय होगई है। अधिकांश राज्योंमें उनकी प्रजा उनके काबूमें नहीं है। जो प्रजा वर्तमान प्रणालीसे शिक्षितहै वह उनके जुल्मसे या स्वतन्त्र व्यवहारसे उनके ऊपर नाराज़ है, जो प्रजा प्राचीन सभ्यतासे सम्बन्ध रखती है। वह उनके अधर्म पूर्ण आचरणसे उनके ऊपर नाराज है। दोनों भांतिकी प्रजाओंके नाराजीका परिणाम यह होता है कि राजाओंको राज्य करना असाध्य हो जाता है। उनकी इस अशक्तिका लाभ सरकारको मिलता है अर्थात् सरकार अपना पैर उनके राज्यमें लम्बा कर देती है। सारी हुकूमत सरकारकी चलने लगती है। महाराजा साहब सरकसके सिंहकी तरह पिंजड़ेमें फुफकार मारा करते हैं। यदि इस ओर बुद्धि दौड़ाई जाती है तो यह अनुमान होता है, कि देशी राजे नाममात्रके ही कहीं कहीं शेष रह गये हैं, इनको सचेतन बनाना अत्यावश्यक है। यह देखनेमें आता है कि व्यापारी लोग अपने धनको देशी राजाओंके बैंकोंमें न रखकर उसको सरकारी बैंकमें रखना अधिक पसन्द करते हैं। इस विपरीत व्यवस्थाके ऊपर बुद्धि दौड़ानेसे यह मालूम होने लगता है कि देशी राजाओंके कर्मचारियोंसे व्यापारियोंको भय रहता है, अर्थात् व्यापारियोंको यह सन्देह रहता है, कि राजाओंके अदूरदर्शी होनेसे उनके कर्मचारी यदि सन्तुष्ट नहीं किये जायँगे तो हमें कदाचित् कभी संकटका मुकाबला करना पड़ेगा। प्रत्यक्षगोचर व्यापारियोंका यह व्यवहार इस अनुमानकी सामग्री बनता है, कि देशी राजाओंकी बुद्धिमें यह बल या उसके उपयोगकी शक्ति नहीं है, कि उसके द्वारा वे अपने कर्मचारियोंको न्याय पथसे डिगने न दें। इस सम्बन्धमें हम इतनाही कह कर फिर यह कहेंगे कि देशी राजाओंके साथ मिलजुल कर संघ उनके राज्यमें सुव्यवस्था स्थापित करे।

संघको इस विषयमें अपनी बुद्धिका उपयोग करना चाहिये कि प्रत्येक सार्वजनिक संस्थाओंका कार्य भार वर्णाश्रमधर्मावलम्बियोंके आधीन होते जांय। जब जब कोई सार्वजनिक कार्य उपस्थित होता है तब

तब उसके सम्पादनके लिये नास्तिक ही सबसे पहिले दौड़ पड़ते हैं। परिश्रमके साथ उस कार्यकी आवश्यकताका भान जनताको कराने लगते हैं। जनता भी कार्यको आवश्यक समझकर सहायता देने लगती है। उस समय जनता इस ओर ध्यान नहीं देती, कि कार्यकर्ता आस्तिक है, या नास्तिक? इस व्यवहारका परिणाम यह होता है कि जनताका धन, विशेषकर आस्तिक जनताका धन खर्च होता है, यश मिलता है नास्तिकोंको। इससे दूसरा अनर्थ यह उपस्थित होता है कि उपकृत जनता नास्तिकोंकी अनुयायी बनती है, और कहने लगती है कि आस्तिक लोग स्वार्थी होते हैं, वे केवल बात करना जानते हैं, काम करना नहीं, परोपकारमें प्रेम तो नास्तिक ही रखते हैं। विचारवान् सज्जन खूब अच्छी तरहसे इस विषयपर ध्यान दें, कि यदि संघने इस ओर शीघ्रातिशीघ्र ध्यान नहीं दिया तो सम्भव है कि वर्णाश्रमियोंके धनसे ही नास्तिकोंके द्वारा वर्णाश्रमधर्मके ऊपर अति शीघ्र महती विपत्ति आनेवाली है। यह कार्य व्ययकी अपेक्षा नहीं रखता। इस कार्यमें केवल उत्साहकी आवश्यकता है। उत्साही नास्तिक लोग जो यश सम्पादन करते हैं उसमें उनका एक पाई भी खर्च नहीं होता है बल्कि उनके इष्ट मित्रोंको कुछ लाभ होता है। लाभसे उपकृत किये गये इष्ट मित्र घूम घूम कर उनके यशका, उनकी बुद्धिमत्ताका, उनकी उदारताका और उनकी शक्तिका लोकोत्तर वर्णन किया करते हैं, यदि संघ भी इस कार्यको करेगा तो संघका एक पाई खर्च नहीं होगा और सङ्घको अनेक अनुयायी मिलेंगे, जिनके द्वारा संघ अपने ध्येयको सफल बना सकेगा। यदि सङ्घको उदाहरणकी आवश्यकता हो तो संघ विहारके भूकंपका स्मरण करें। इस भूकंपसे पहिले यह कौन जानता था कि बाबू राजेन्द्रप्रसाद कहां रहते हैं और किस श्रेणीके मनुष्य हैं। अपने धनका ट्रस्ट करते समय भी आस्तिकोंको सोच समझकर आस्तिक ट्रस्टियोंको पसन्द करना चाहिये। नास्तिक ट्रस्टियोंके हाथमें धन सौंपना अपने धनसे अपने लिये नरकका द्वार खोलना है।

संघके कर्तव्योंमें यह भी एक कर्तव्य है, कि संघ जनताको सावधान कर दे, कि वह धार्मिक बाबतमें पेपरोंका विश्वास न करे। प्रचलित अनेक पेपर ऐसे हैं कि वे नास्तिकोंके प्रयत्नसे चलते हैं, उनका एक मात्र यही कर्तव्य है कि हिन्दु धर्मकी निन्दा पानी पी पीकर करना। हमारे यहां इस विषयका प्रमाण एक नहीं अनेक हैं, कि पेपर धर्म और धर्मात्माओंके

विषयमें हद्द बाहर झूँठ बोलते हैं। जिस नास्तिक सभामें १०—१५ आदमियोंकी भी उपस्थिति होती है, उसका वर्णन इस प्रकार करते हैं, कि लेक्चर हाल खूब खचाखच भरा था। जनता शान्त चित्तसे अमुक नेताका व्याख्यान सुनती थी। परन्तु यदि आस्तिकोंकी सभा हो तो पेपर प्रायः इसकी खबर छापते ही नहीं उपेक्षा कर जाते हैं। यदि सभा अति महती होती है, उपेक्षाका अवसर नहीं रहता है, तो उसकी खबरको खूब बिगाड़कर छापते हैं, लिख देते हैं, कि उपस्थिति बहुत कम थी, सभामें बार बार कोलाहल होती थी। इस मिथ्याका फल यह होता है, कि जो जनता सभाओंमें जाती नहीं, पेपरोंके द्वाराही खबरोंको जानती है, पेपरोंको ही वेदवाक्य मानती है, उसके मन पर आस्तिकोंके प्रति असद्भाव उत्पन्न होता है, परिणाम यह होता है कि वर्णाश्रम धर्मियोंके कार्यमें वह जनता सहयोग देना नापसंद करती है। इस अनर्थका निवारण जैसे हो वैसे तत्परताके साथ संघको करना चाहिये। यह रोग गलेके केन्सरकी तरह भयानक है। जब संघ सत्यके प्रचारके लिये उद्यत हुआ है, तो उसको अपना कर्तव्य निर्भीक होकर करना चाहिये। मिथ्या समाचारका प्रचारक अथवा धर्म विरुद्ध लेखका सहायक या सम्पादक यदि अपना मित्र भी हो तो धार्मिकताकी दृष्टिसे उसको अपना परम शत्रु समझना चाहिये।

संघका एक यह भी कर्तव्य है कि वह प्रचार के द्वारा स्थानीय विद्वानोंके द्वारा नित्यकर्मका प्रचार करे। यह भी कार्य अतिव्यय साध्य नहीं है। गांव गांवके आस्तिक विद्वान सायंकालमें केवल एक घंटाका समय देकर अपने अपने गांव या महल्लोंके बालकोंको उनके अधिकारके अनुसार नित्यकर्मको सिखलावें, तो भी इस कार्यकी पूर्ति हो सकती है। नित्यकर्मके अभावसे जनता निस्तेज बनती जाती है। आहार विहारमें प्रमाद करती जाती है। सम्प्रति जो नास्तिक दल दृष्टिगोचर होता है उसके कारणकी ओर यदि दृष्टिपात किया जाय तो यही सिद्ध होगा कि यह परिमाण नित्यकर्मके अभावका है। ब्राह्मणोंके घरमें भी नित्यकर्मका अभाव सा हो रहा है। इस विषयमें विशेष प्रकाश डालनेकी आवश्यकता नहीं है केवल कार्यारंभ कर देनेकी आवश्यकता है।

संस्कारोंकी परिपाटी भी बदलती जाती है। कई संस्कार तो होते ही नहीं। जो होते भी हैं उनमें भी विधि विधानकी त्रुटि

दृष्टिगोचर होती है। इसके कारण अनेक होंगे, परन्तु हमें एक कारण विदित हुआ है जिसको आप लोगोंके समक्ष कह देना आवश्यक समझते हैं। हिंदुओंमें आडम्बर बढ़ गया है। किसी भी शुभाशुभ कर्ममें विधिविधानकी अपेक्षा आडम्बर ही को प्रधान स्थान दिया जाता है। आडम्बरके बढ़ जानेसे धीरे धीरे खर्चा बढ़ जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि जो आडंबर करनेमें अपनेको शक्तिमान् नहीं समझता, वह उस संस्कार की ही उपेक्षा कर देता है। संघके विद्वानोंको इस ओर ध्यान देना चाहिये कि वर्णाश्रमधर्मका पहिला सोपान संस्कार है। यदि वही अतिशिथिल हुआ तो वर्णाश्रम धर्म कैसे स्थिर रह सकता है।

अब हम कुछ अपने दोषोंका या अपने समाजके दोषोंका उद्घाटन करेंगे। जब तक अपने दोषोंके ऊपर दृष्टिपात नहीं किया जाता, तब तक दूसरोंके दोषोंका उद्घाटन न्याय प्राप्त नहीं माना जाता। वर्णाश्रम स्वराज्य संघका यह सातवां वर्ष है। अबतक इसकी नीतिमें किसी प्रकार का स्वार्थ या दोष अवगत नहीं हुआ है, तो भी क्या कारण है, कि अब तक इसको सब ही धर्मपीठोंका सहयोग नहीं प्राप्त हुआ है। पूर्वाचार्योंने धर्मपीठोंकी स्थापना धर्मकी रक्षाके लिये की है। धर्मावलम्बी गृहस्थोंने धर्मपीठोंकी सहायता इस लिये की है, करती आई है और करती है कि उन धर्म पीठोंके द्वारा हमारे वर्णाश्रमधर्म की रक्षा होगी। भारतवर्षमें सैकड़ों नहीं हजारों नहीं बल्कि छोटे बड़े लाखों धर्मस्थान हैं, तौ भी धर्मकी महती ग्लाने देखनेमें आती है। (इस बात पर किसीको आश्चर्य नहीं प्रकट करना चाहिये कि भारतवर्षमें लाखों धर्मपीठ कहाँ हैं?। भारतवर्षमें ग्राम संख्या सात लाख है। प्रायः कोई ऐसा अभागा ग्राम होगा कि जहाँ एक धर्म स्थान न हो। शहरोंमें तो एकके स्थानमें अनेक धर्म स्थान होते हैं)।, इतने धर्म स्थानोंके होते हुए भी वर्णाश्रम स्वराज्य संघको धर्मवीरोंकी अनुपपत्ति बनी रहे धनकी अनुपत्ति बनी रहे. क्या यह विषय विचारणीय नहीं है? यदि किसीकी ओरसे यह कहा जाय कि हमको वर्णाश्रमधर्मके उद्देश्य मान्य नहीं हैं, तो हमें धृष्टता-पूर्वक यह कहना पड़ेगा, कि जिनको संघके उद्देश्य मान्य नहीं हैं, वे सनातन धर्मावलंबी हिन्दू कहलानेका साहस ही कैसे कर सकते हैं। साथ ही साथ

हमें मन्दिरमालिक और भूदेवोंसे भी इस प्रश्नका उत्तर पूछना है कि आप लोग अलग २ रहकर धर्मकी रक्षा करनेमें यदि असमर्थ हैं तो संघमें सोत्साह सम्मिलित होकर धर्मकी रक्षा क्यों नहीं करते?।

यहाँ हम यह भी कह देना आवश्यक समझते हैं, कि कई लोगोंका यह समझना है कि मेरा संघमें उचित आदर नहीं है, यह उनकी भूल है। सभाओंमें जो निःस्वार्थ अधिक सहयोग देता है, वही नेता माना जाता है। जिसको सभाके द्वारा सन्मान पानेकी इच्छा हो वह सभामें मनसा, वाचा कर्मणा सहयोग दे। सभासे अलग ही रहना और सभाके ऊपर नाराज होना यह उचित नहीं है। संघका द्वार मुक्त है, जो आस्तिक चाहे निःस्वार्थ भावसे इसमें सहयोग देकर इसका प्रधान बन सकता है। किसी किसी का यह भी तर्क निराधार है, कि भारतवर्षमें अनेक सिद्धान्तके अनेक धर्मपीठोंके होनेसे किसी सभामें सबसम्प्रदायाचार्योंका या उनके अनुयायियोंका समावेश नहीं हो सकता। वर्ण धर्म और आश्रमधर्ममें सब सम्प्रदायके लोगोंका ऐकमत्य है। हम पहले ही कह चुके हैं कि वर्णाश्रम ही सनातनधर्म है। मत भेद जहां है, वह द्वैताद्वैत आदि सम्बन्धी विचार इस सभाका विषय नहीं है। इस प्रकारका मतभेद वास्तवमें मतभेद भी नहीं कहा जा सकता। दर्शन कर्ता आचार्योंके सिद्धान्त भी अलग अलग हैं, तो भी उन महर्षियोंमें या उनके अनुयायियोंमें मतभेद नहीं सुना जाता, न तो देखा जाता है। जो एक ही विद्वान सब दर्शनोंका ज्ञाता होता है वह क्या अपने आप को द्वेषी समझता है? अथवा जो विद्वान किसी एक दर्शनका प्रखर पंडित होता है वह क्या अन्य दर्शनके सदाचारी विद्वानको अपना द्वेषी मानता है? कदाचित् स्पर्धी मानता भी हो तो स्पर्धा और बात है द्वेष और बात है। स्पर्धा तो एक सिद्धान्तके दो विद्वानोंमें भी होती है। इस विषयमें भी विशेष न बोलकर हम संपूर्ण धर्माचार्य, मठाधीश, विद्वान और मंदिर मालिकोंको यह उलहना देते हैं, कि अब तक आप लोग वर्णाश्रम स्वराज्य संघमें सम्मिलित क्यों नहीं हुए हैं। इस उलहनाके लक्ष्य वे धर्माभिमानी हैं जिनका सहयोग साक्षात् या प्रतिनेधि द्वारा संघको अब तक प्राप्त नहीं हुआ है।

सरकारके साथ किस नीतिसे काम लेना इसके लिये संघने पोलिटिकल कमेटी बनाई है अतः इस संबंधमें हम स्वतंत्ररूपसे अपनी राय तावत् प्रगट करना नहीं चाहते हैं, तौ भी इस अंशमें तो हम अडग हैं कि जब तक सरकार धार्मिक संरक्षणकी घोषणा कानूनके तौरपर न कर दे तब तक उसकी अन्य बातों पर विचार तक नहीं किया जाय। सरकारने धार्मिक जनताको सर्वथा अकर्मण्य समझ लिया है। यही कारण है कि सरकारने जो कुछ टूटा फूटा धार्मिक संरक्षण था उसको भी नये कानूनमें स्थान नहीं दिया है। सरकारको सनातानियोंकी शक्ति का अब तक परिचय नहीं है। संघका यह कर्तव्य है कि गांव गांवमें घूम २ कर ग्रामीण गृहस्थोंको सरकारी धार्मिक असद्भावसे परिचित कराकर उनको इस प्रकार उत्तेजित करें कि वे भी सरकारको यह जना देनमें समर्थ हों कि हम भी बोलती फिल्म हैं, मूँगा पत्थर नहीं हैं। इस सरकारकी एक मात्र यह नीति है कि जिस पलराको भारी देखती है उसीके ऊपर आप भी जा बैठती है।

अब हम अपने वक्तव्यका उपसंहार करते हैं। आप लोगोंसे यह हमारा अन्तिम कथन है कि जीवात्माको उन्नत बनानेका साधन एक मात्र धर्म है। अन्य सर्व शरीरसंपत्ति धनसंपत्ति आदि सामग्रियाँ धर्मके साधन हैं। अतः सर्व, वस्तुओंमें धर्मही श्रेष्ठ वस्तु है। राजसत्तासे धर्म सत्ता बहुमूल्य और दीर्घजीवी पदार्थ है, मुसलमानोंकी राजसत्ता बहुत वर्षों तक रहकर यहांसे चली गयी। मुसलमानी राज्यके झपाटेमें आकर जो लोग मुसलमान बन गये थे वे मुसलमानी राजसत्ताके चले जानेपर भी अबतक मुसलमान बने हुए हैं। परन्तु जो लोग उस आंधीसे बच गये वे अब तक जैसेके तैसे हिन्दू बने हुए हैं। इस समय भी जो वर्तमान धांधलमें फँसकर धर्मसे च्युत हो जायँगे वे इस धांधलके जानेपर भी धर्मच्युत ही रहेंगे। आप भी दुःखी रहेंगे हम लोगोंको भी हिन्दी मुसलमानोंकी तरह दुःखी रक्खेंगे। हम लोगोंको इसलिये भी कटिबद्ध होकर परिश्रम करना चाहिये कि एक भी हिन्दू हिन्दूधर्मसे विचलित न होने पावे। वर्णाश्रम स्वराज्य संघके अन्दर एक ऐसी कमिटीकी भी आवश्यकता है जो अनाथबालक और अनाथ विधवाओंकी रक्षाकी खोजमें रहे। प्रायःबालक या विधवायें अपनेको अनाथ

समझने पर अपने धर्मसे विचलित हो जाया करती हैं। भारतका प्रधान धन गौ हैं, उनकी सेवा इस देशका प्रधान धर्म है, उसके लिये बार बार प्रस्ताव किया जाता है,परन्तु उस सम्बन्धमें कुछ कार्य नहीं किया जाता। अतः हम आग्रहके साथ कहेंगे कि संघ गोरक्षाके कार्यको अपना प्रधान कर्तव्य समझकर कानूनन गोबध बन्द करानेके लिये एसेम्बली और प्रांतीय व्यवस्थापिका परिषदोंमें जोरोंसे आन्दोलन उठावे।

अन्तमें हम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें बारम्बार प्रार्थना करते हैं कि वे हमको ऐसी शक्ति और सद्बुद्धि प्रदान करें जिससे हम इस पवित्र कार्यमें शीघ्रातिशीघ्र सफल हों। इस समय हम सनातनियोंको आश्वासन देनेवाली यह आज्ञाही है कि--"यदायदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

शुभम्।

मुद्रकः--

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

प्रकाशकः—

स्वागत मन्त्री गिरजाशङ्कर जोशी.

अहमदाबाद.